Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)
UGC Approved Sr.No.64259
Vol - V Issue-III MARCH 2018 ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की हिंदी कविता और महानगरीय बोध

डॉ. सन्मुख नागनाथ मुच्छटे
सहाय्यक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
बी.एस.एस. कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, माकणी

समाज निरंतर परिवर्तनशील होता है । समय और कालानुरुप उसमें परिवर्तन दृष्टिपात होता है । इससे साहित्य और उसकी समस्त विधाएँ भी प्रभावित हुई है । अर्थात साहित्य की सभी विधाएँ समाज परिवर्तन के साथ स्वयं में भी परिवर्तन करती नजर आती है । रचनाकार एक संवेदनशील व्यक्ति होने के कारण वह अपने आजू-बाजू के परिवेश में होते परिवर्तन को नजअंदाज नहीं कर सकता बल्कि वह तो उस परिवर्तित परिवेश को अपनी रचना में उतारने का सक्षम प्रयास करता रहता है । इसीलिए साहित्य की अलग-अलग विधाओं में समकालीन परिवर्तित परिवेशों का यथार्थ दर्शन होता है । साहित्य की सभी विधाएँ इसी मार्ग का अवलंब करती है । उससे साहित्य की काव्य विधा भी अछूती नहीं है । काव्य में कवि अपनी प्रतिभा, कौशल्य और कल्पना के द्वारा तीव्र मनोवेगों की भावात्मक अभिव्यक्ति करता है । अपनी प्रतिभा और कौशल्य के बलबूते ҆ वह अपने परिवेश को जस का तस अपनी काव्यकृति में उतारता है । इक्कीसवीं सदी के प्रथम में भी समाज के विविध क्षेत्रों में (जैसे - राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांप्रदायिक आदि) हुए परिवर्तन को साहित्य को समस्त विधाओं ने सूक्ष्मता से ग्रहण कर उसे यथार्थ धरातल पर अपनी रचनाओं में वाणी दी है । वैश्वीकरण मुक्त अर्थव्यवस्था, पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का भारतीय मानसिकता पर बढता प्रभाव आदि के कारण देश का आम व्यक्ति सभी दृष्टियों से प्रभावित हुआ है । वैश्वीकरण ने गाँवों की अपेक्षा महानगरों का सर्वाधिक प्रभावित किया है । फलस्वरुप महानगर आधुनिकता के उच्च स्तर पर पहुँचने की चेष्टा करने लगे । गाँव में रहनेवाले आम व्यक्ति को इस आधुनिकता के मोह ने शहरों की ओर आने के लिए आकर्षित किया । परिणाम यह हुआ कि, शहरों में बेसुमार जनसंख्या बढने लगी और सर्वसामान्य जनों के जीवन में विविध समस्याओं का आगमन हुआ । समकालीन रचनाकार भी इसी परिवेश का एक अंग रहा । उसने जीवन में उत्पन्न विविध समस्याओं को करीबी से देखा और उसे अपनी रचना में वाणी दी । इसमें कवि भी पीछे नहीं रहे । इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक के कवियों ने इस परिवर्तित परिवेश को सजीव शब्दावली में पद्य में बाँधने का सफल प्रयास किया । इस सदी की समस्त कविताएँ अपने समकालीन परिवेश से प्रभावित और प्रेरित रही हैं । रोजमर्रा के जीवन में उत्पन्न समस्याएँ, इन कविताओं का मूल स्वर रहा है । उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति इस सदी के कवियों ने अपनी काव्य रचनाओं में की है । इस सदी की कविताओं में महानगरीय बोध की स्पष्ट झाँ की देखने को मिलती है । इस महानगरीय बोध को इस सदी के कवियों पूरी एकरसता के साथ अपनी कविताओं में उतारा है ।

महानगरों में अनेक प्रकार की सुविधाएँ होती हैं । इन सुविधाओं में सबसे प्रमुख सुविधा शिक्षा के संदर्भ की है । महानगर में बसने वाला व्यक्ति शिक्षा के प्रति काफी सतर्क रहता है । इसीलिए वह सदैव अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देने का प्रयास करता है । गाँव से मजदूरी की तलाश में शह आये लोग भी अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देने का प्रयास करते हैं । अपने बच्चों के प्रति परिवर्तित यह मानसिकता गाँव में रहते समय उनमें नहीं थी । महानगर में आकर बसने के बाद उनकी मानसिकता अपने बच्चों के भविष्य के प्रति काफी सचेत बन जाती है । फलस्वरुप वे भी अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देना चाहते हैं । इसका स्पष्ट दर्शन डॉ.बुलाकार की कविता 'कितनी खुश है आज कजरी' में होता है । कजरी काम की तलाश में महानगर आई है और वही बसी है । उसने शिक्षा के महत्त्व को जाना है । इसलिए वह भी अपने बच्चों को पाठशाला में भेजती है । कजरी की शिक्षा के प्रति परिवर्तित मानसिकता को शब्दों में बध्द करते हुए कवयित्री लिखती हैं कि,

"बर्तन, पोंछा, कपडों का काम करते
अब रविवार को नहीं जाएगी कहीं
कोशिश करेगी पढना, चुनाव में खडे होना,
घर की लडाई छोड लडेगी अपने हक के लिए
उस खुशबू से महमहाती, इठलाती कजरी,
कितनी खुश है आज !"[१]

महानगरों में बेसुमार जनसंख्या होती है और प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए तत्प होता है । इसलिए यहाँ एक-दूसरे के प्रति संवेदना आदि जताना कुछ भी नहीं होता । हर व्यक्ति यहाँ एक-दूसरे से अपरिचित रहना पसंद करता है । इसलिए महानगरों में हर तरफ असंवेदनशीलता का दर्शन अधिक मात्रा में होता है । महानगरों में स्थित असंवेदनशीलता पर प्रकाश डालते हुए दीपक त्रिपाठी 'दीप' अपनी कविता 'अच्छा हुआ' में लिखते हैं कि,

"मुझे भी आदत पड गई
दूसरों की विवशता पर
हँसने की ।
सीख लिया है मैंने भी
फितरती होना
और अच्छा हुआ कि
मर गई मेरी भावनाएँ ।"[२]

महानगरों में हर तरफ विसंगतियों का माहौल दिखाई देता है । प्रत्येक व्यक्ति के कथनी और करनी में अंतर होता है । इन विसंगतियों ने संडाध का रुप धारण कर घर की चौखट को पार कर घर में प्रवेश किया है । परिणामस्वरुप पूरा परिवेश असंतुलित बना हुआ है । महानगरीय विसंगतियों पर प्रकाश डालते हुए कवि हरकीरत हीर अपनी कविता 'संडाध' में लिखते हैं कि,

"पंखें के ब्लेड की तरह
सारी विसंगतियाँ
तेज रफ्तार से घूमने लगी हैं
अचानक दरवाजा धकेल
अंदर आने लगती है संडाध
हवा परिक्रमा करती है
उखडने लगी हैं साँसे
एक एक कर
सारी दीवारे ठहने लगी है ।"[३]

महानगरों में सर्वत्र यांत्रिकता दिखाई देती है । प्रत्येक व्यक्ति मशीन की तरह अपने-अपने कामों में लगे हुए हैं । उनके पास भावनाओं का आदान-प्रदान करने के लिए समय नहीं है । यह केवल बाहरी परिवेश में ही घटित होता है, ऐसा नहीं बल्कि घरों में भी पारिवारिक सदस्य एक-दूसरे से उचित दूरी बनाये रहते हैं । इस यांत्रिकता के कारण आपसी स्नेह, आत्मीयता आदि मानवीय संवेदनाओं के उच्च तत्वों का -हास हो रहा है और घर भी व्यक्ति के लिए पराया बनता जा रहा है । यांत्रिकता के फलस्वरुप प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने काम में व्यस्त दिखाई दे रहा है । इसलिए महानगरीय व्यक्ति बुत के समान बना हुआ है । महानगरीय यांत्रिकता पर लीला मल्होत्रा राव अपनी कविता 'विज्ञापन' में लिखती हैं कि,

"और कभी जब बत्ती गुल हो जाती है
तो बत्ती आने की प्रतिक्षा में
हम एक-दूसरे को अपने फन्नी दोस्तों
की बातें और स्टेटस सुनाते हैं
और खूब हँसते हैं
हमारे पडोसी चकित हैं
कि अँधेरा होते ही हमारे घर से हँसी
की फुहारे क्यों फूँटने लगते हैं ।"[४]

यहाँ कवयित्री ने पडोसियों के माध्यम से महानगरीय यांत्रिकता की ओर संकेत किया है । महानगरों में विविध सुविधाएँ होती हैं और ये आधुनिकता के काफी समीप होते हैं । इसलिए गाँव के लोगों के मन में इनके प्रति विशेष आकर्षण होता है । जो

चीज गाँववालों ने कभी नहीं देखी थी, उसे महानगरों में वे देखते हैं । फलस्वरुप गाँववालों को महानगर अपनी ओर आने के लिए आकर्षित करते हैं । गाँव का व्यक्ति महानगर जाना और वहाँ पर बसना, अपने लिए विशेष प्रतिष्ठा का विषय मानता है । महानगरों की चीजों को लेना और उसका प्रयोग करना यह गाँववालों के लिए विशेष रहा है । इस मानसिकता को कवि विश्वनाथ अपनी कविता 'मेरी ननिहाल सतघरा' में एक लडके द्वारा अभिव्यक्ति करते हैं । यहाँ लडके की अनुभूति को कवि ने समस्त ग्रामवासियों की अनुभूति के समान माना है । इस संदर्भ में वे लिखते हैं कि,

"कभी-कभी ही कोई लडका
शहर में पढने जाता था
जब आता था
शहर की हवा अपने साथ ले जाता था ।"[५]

गाँव में आने के बाद लडके के परिवर्तित रुप को देखकर गाँववालों के मन में भी महानगर का आकर्षण बढ जाता है । कवि की उपरोक्त पंक्तियाँ इसी भाव का संकेत करती हैं ।

महानगरों में समान आर्थिक स्तर के लोग नहीं रहते हैं । वहाँ पर भी गरीबी और अमीरी का स्पष्ट दर्शन होता है । गाँव की अपेक्षा महानगरों में इसका दर्शन अधिक होता है । महानगरों में एक ओर संपन्नता होती है तो दूसरी ओर घोर विपन्नता । संपन्न व्यक्ति अपनी संपन्नता के बलबूते पर स्वयं को कभी भूख लगने ही नहीं देता और दूसरी ओर विपन्नता में पडे लोग भूख मिटाने के लिए दिन-रात मेहनत करते हैं । अर्थात महानगरों में अमीरी-गरीबी की खाई को स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है । इस संवेदना को शब्द रुप देते हुए कवि माली अपनी कविता 'ये औरतें वे औरतें' में लिखते हैं कि,

"ये औरतें दिन भर
ईंट-भटों पर खटने के बाद
बारात में
सिर पर गैस के हंडे ढोती हैं ।
वे औरतें
कीमती साडी-गहनों से लदी-फँदी
सज-सँवरकर बारात में
मादक गानों की धुन पर घिरकती हैं ।
ये औरतें उन्हें देखकर ललचाती हैं ।
वे औरतें इन्हें देखकरर
रुमाल से नाक तोपती हैं ।
ठन औरतों की देह में
पेट के सिवा कुछ नहीं,
उन औरतों के पेट में
देह के सिवा कुछ नहीं ।"[६]

कवि ने औरतों के माध्यम से महानगरीय अमीरी-गरीबी की ओर इशारा किया है ।

महानगरों में सामान्य व्यक्ति की ध्वनि को कोई नहीं सुनता । उसके ध्वनि को बार-बार कुछला जाता है । लेकिन संपन्न व्यक्ति की स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है । अर्थात महानगरों में सामंतवाद का बोलबाला बढ रहा है । यह सामंतवादी प्रवृत्ति सदैव सर्वसामान्य व्यक्ति की ध्वनि को कुचलने का काम करती है । महानगर की इस प्रवृत्ति को अधोरेखित करते हुए कवि देवेंद्रकुमार मिश्रा अपनी कविता 'प्रश्न' में लिखते हैं कि,

"आपके पास न वकील है न दलील है
न सबत है न गवाह है
अगर आपने फिर प्रश्न करने की
कोशिश की तो आपके लिए

ठीक नहीं होगा, बाहर निकालो इस
अनपढ गँवार आदमी को
न माने तो तडीपार करो इसे ।''[७]

महानगरों में सर्वसामान्य व्यक्ति की स्थिति उपरोक्त पंक्तियों के समान ही है ।

महानगरों में अनेक प्रकार की समस्याएँ होती हैं । उसमें ध्वनि प्रदूषण की समस्या प्रमुख है । इस समस्या को शब्दबध्द करते हुए कवि लीलाधर मंडलोई अपनी कविता 'भूल गया जीना' में लिखते हैं कि,

''उसका दिन शुरु होता है
शोर के महाशोर से
स्कूल से बाजार
कम्प्यूटर से सिनेमा हॉल तक
ध्वनि शोर का महासंजाल है
असाध्य इस शोर से घिरा
वह भूल गया
अपनी खामोशी का मूल संगीत
मौन का नाद सुख ।''[८]

महानगरीय समस्याओं में और एक महत्त्वपूर्ण समस्या रही है, वह है बाल मजदूरों की समस्या । महानगरों में अनेक प्रकार के कार्य चलते रहते हैं और उसकी पूर्ति के लिए उनके पास मजदूर उपलब्ध नहीं रहतें । तब बच्चों का प्रयोग मजदूरों के रुप में अधिक मात्रा में किया जा रहा है । जिन बच्चों की आयु खेलने-कूदने की है, उनको मजबूरी वश मजदूरी करना पडता है । इस समस्या पर प्रकाश डालते हुए कवयित्री नगमा जावेद अपनी कविता 'यह ऊँची इमारत' में लिखती हैं कि,

''उस मासूम बालक के लिए
जिसके हाथों से
खिलाने छीन कर
ठेकेदार ने उसे रखा है
बोझा ढोने के लिए ।''[९]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि, इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की हिंदी कविताओं में महानगरीय बोध की स्पष्ट झलक दृष्टिगोचर होती है । इस दशक के कवियों ने अपने परिवर्तित परिवेश को अपनी रचनाओं में यथार्थ धरातल पर उतारने का सफल प्रयास किया है । भूमंडलीकरण के कारण महानगर उत्तरोत्तर विकास की ओ अग्रसर हो रहे हैं । परिणामस्वरुप इस विकास की गूँज गाँवों तक सुनाई दे रही है और गाँव वाले महानगर की ओर बडी तादाद में जा रहे हैं ।

महानगरों में बढती जनसंख्या के कारण विभिन्न समस्याओं का जन्म हो रहा है । उससे महानगर में बसे व्यक्ति का मन प्रभावित हो रहा है । इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक के कवियों ने उसी प्रभाव को अपनी रचनाओं में स्पष्ट अभिव्यक्ति दी है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

१. सं. रतनकुमार पाण्डेय - 'अनभै' त्रैमासिक, अप्रैल-जून,२०१३, पृ.९१
२. सं. विद्या निवास मिश्र - 'साहित्य अमृत' मासिक, अगस्त,२००४, पृ.७१
३. सं. राजेंद्र यादव - 'हंस' मासिक, नवम्बर,२०१२, पृ.४९
४. वही, अक्तूबर,२०१२, पृ.४४
५. सं. संजन सहाय - 'हंस' मासिक, जनवरी,२०१४, पृ.४६
६. वही, अप्रैल,२०१४, पृ.४६
७. वही, पृ.४७
८. सं. राजेंद्र यादव - 'हंस' मासिक, दिसम्बर,२०१२ पृ.५०
९. सं. रतनकुमार पाण्डेय - 'अनभै' त्रैमासिक, अप्रैल-जून,२००८, पृ.८२